आगमों के अधिकार और गणिपिटक की शाश्वतता

● आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी महाराज

आचार्यप्रवर आत्माराम जी महाराज श्रमण संघ के प्रथम आचार्य थे। उन्होंने कई आगमों का हिन्दी में विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। प्रस्तुत पाठ्य सामग्री उनके द्वारा नन्दीसूत्र पर लिखी भूमिका से संगृहीत है। इसमें तीन विषय हैं– (१) आगमों के श्रुतस्कन्ध, अध्ययन आदि का अभिप्राय (२) द्वादशांङ्ग गणिपिटक में परिवर्तनशीलता और (३) श्रुतज्ञान का महत्त्व।

—सम्पादक

आगमों के अध्ययन आदि अधिकार

आगमों का प्रस्तुतीकरण कहीं श्रुतस्कन्ध के रूप में, कहीं वर्ग के रूप में तो कहीं दशा के रूप में होता है। इसी प्रकार शतक, स्थान, समवाय, प्राभृत आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। यहाँ पर उसी की चर्चा की जा रही है—

श्रुतस्कन्ध—अध्ययनों के समूह को स्कन्ध कहते हैं। वैदिक परम्परा में श्रीमद्‌भागवत पुराण के अन्तर्गत स्कन्धों का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक स्कन्ध में अनेक अध्याय हैं। जैनागमों में भी स्कन्ध का प्रयोग हुआ है। केवल स्कन्ध का ही नहीं, अपितु श्रुतस्कन्ध का उल्लेख मिलता है। किसी भी आगम में दो श्रुतस्कन्धों से अधिक स्कन्धों का प्रयोग नहीं मिलता। आचारांग, सूत्रकृतांग, ज्ञाताधर्मकथा, प्रश्नव्याकरण और विपाक सूत्र इनमें प्रत्येक सूत्र के दो भाग किए हैं, जिन्हें जैन परिभाषा में श्रुतस्कन्ध कहते हैं। पहला श्रुतस्कन्ध और दूसरा श्रुतस्कन्ध, इस प्रकार विभाग करने के दो उद्देश्य हो सकते हैं, आचारांग में संयम की आन्तरिक विशुद्धि और बाह्य विशुद्धि की दृष्टि से और सूत्रकृतांग में पद्य और गद्य की दृष्टि से। ज्ञाताधर्मकथा में आराधक और विराधक की दृष्टि से तथा प्रश्नव्याकरण में आश्रव और संवर की दृष्टि से एवं विपाक सूत्र में अशुभविपाक और शुभविपाक की दृष्टि से विषय को दो श्रुतस्कन्धों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक श्रुतस्कन्ध में अनेक अध्ययन हैं और किसी—किसी अध्ययन में अनेक उद्देशक भी हैं।

वर्ग— वर्ग भी अध्ययनों के समूह को ही कहते हैं, अन्तकृतसूत्र में आठ वर्ग हैं। अनुत्तरौपपातिक में तीन वर्ग और ज्ञाताधर्मकथा के दूसरे श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग हैं।

दशा— दश अध्ययनों के समूह को दशा कहते हैं। जिनके जीवन की दशा प्रगति की ओर बढ़ी, उसे भी दशा कहते हैं, जैसे कि उपासकदशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, अन्तकृद्दशा, इन तीन दशाओं में इतिहास है। जिस दशा में इतिहास की प्रचुरता नहीं, अपितु आचार की प्रचुरता है, वह दशाश्रुतस्कन्ध है, इस सूत्र में दशा का प्रयोग अन्त में न करके आदि में किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतक भगवती सूत्र में अध्ययन के स्थान पर शतक का प्रयोग किया गया है। अन्य किसी आगम में शतक का प्रयोग नहीं किया।

स्थान– स्थानांग सूत्र में अध्ययन के स्थान पर स्थान शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके पहले स्थान में एक–एक विषय का, दूसरे में दो–दो का यावत् दसवें में दस–दस विषयों का क्रमशः वर्णन किया गया है।

समवाय– समवायांग सूत्र में अध्ययन के स्थान पर समवाय का प्रयोग हुआ है, इसमें स्थानांग की तरह संक्षिप्त शैली है, किन्तु विशेषता इसमें यह है कि एक से लेकर करोड़ तक जितने विषय हैं, उनका वर्णन किया गया है। स्थानांग और समवायांग को यदि आगमों की विषयसूचि कहा जाए तो अनुचित न होगा।

प्राभृत– दृष्टिवाद, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति इनमें प्राभृत का प्रयोग अध्ययन के स्थान में किया है और उद्देशक के स्थान पर प्राभृतप्राभृत।

पद– प्रज्ञापना सूत्र में अध्ययन के स्थान में सूत्रकार ने पद का प्रयोग किया है, इसके ३६ पद हैं। इसमें अधिकतर द्रव्यानुयोग का वर्णन है।

प्रतिपत्ति– जीवाभिगमसूत्र में अध्ययन के स्थान पर प्रतिपत्ति का प्रयोग किया हुआ है। इसका अर्थ होता है– जिनके द्वारा पदार्थों के स्वरूप को जाना जाए, उन्हें प्रतिपत्ति कहते हैं– प्रतिपद्यन्ते यथार्थमवगम्यन्तेऽर्था आभिरिति प्रतिपत्तयः।

वक्षस्कार– जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में अध्ययन के स्थान पर वक्षस्कार का प्रयोग हुआ है। इसका मुख्य विषय भूगोल और खगोल का है। भगवान ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती का इतिहास भी वर्णित है।

उद्देशक– अध्ययन, शतक, पद और स्थान इनके उपभाग को उद्देशक कहते हैं। आचारांग, सूत्रकृतांग, भगवती, स्थानांग, व्यवहारसूत्र, बृहत्कल्प, निशीथ, दशवैकालिक, प्रज्ञापना सूत्र और जीवाभिगम इन सूत्रों में उद्देशकों का वर्णन मिलता है।

अध्ययन– जैनागमों में अध्याय नहीं,, अपितु अध्ययन का प्रयोग हुआ है और उस अध्ययन का नाम निर्देश भी । अध्ययन के नाम से ही ज्ञात हो जाता है कि इस अध्ययन में अमुक विषय का वर्णन है। यह विशेषता जैनागम के अतिरिक्त अन्य किसी शास्त्र ग्रन्थ में नहीं पाई जाती। आचारांग, सूत्रकृतांग, ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरौपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आवश्यक और निरियावलिका आदि ५ सूत्रों तथा नन्दी– इनमें आगमकारों ने अध्ययन का प्रयोग किया है।

द्वादशांग गणिपिटक क्या सदैव एक जैसे रहते हैं?

द्वादशांग गणिपिटक सभी तीर्थंकरों के शासन में नियमेन पाया जाता है तो क्या उनमें विषय वर्णन एक सदृश ही होता है? या विभिन्न पद्धतियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से होता है? इस प्रकार अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर निम्न प्रकार से दिए जाते हैं।

द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग और गणितानुयोग इनका वर्णन तो प्राय: तुल्य ही होता है, युगानुकूल वर्णन शैली बदलती रहती है, किन्तु धर्मकथानुयोग प्राय: बदलता रहता है।उपदेश, शिक्षा, इतिहास, दृष्टान्त, उदाहरण और उपमाएं इत्यादि विषय बदलते रहते हैं। इनमें समानता नहीं पाई जाती। जैसे कि काकन्द नगरी के धन्ना अनगार ने ११ अंग सूत्रों का अध्ययन नौ महीनों में ही कर लिया था, ऐसा अनुत्तरौपपातिक सूत्र में उल्लिखित है। अतिमुक्त कुमार (एवंताकुमार) जी ने भी ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया, जिनका विस्तृत वर्णन अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग में है, स्कन्धक संन्यासी जो कि महावीर स्वामी के सुशिष्य बने,उन्होंने भी एकादशांग गणिपिटक का अध्ययन किया, ऐसा भगवती सूत्र में स्पष्टोल्लेख मिलता है। इसी प्रकार मेघकुमार मुनिवर ने भी ग्यारह अंगसूत्रों का श्रुतज्ञान प्राप्त किया है, ऐसा ज्ञाताधर्मकथासूत्र में वर्णित है। इत्यादि अनेक उद्धरणों से प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या उन्होंने उन आगमों में अपने ही इतिहास का अध्ययन किया है? इसका उत्तर इकरार में नहीं, इन्कार में ही मिल सकता है। इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि जो सूत्र वर्तमान काल में उपलब्ध हैं, वे उनके अध्येता नहीं थे, उन्होंने सुधर्मास्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी गणधर की वाचना के अनुसार ग्यारह अंगों का अध्ययन किया था। दृष्टिवाद में आजीवक और त्रैराशिक मत का वर्णन मिलता है, तो क्या भगवान ऋषभदेव के युग में भी इन मतों का वर्णन दृष्टिवाद में था? गण्डिकानुयोग में एक भद्रबाहुगण्डिका है तो क्या ऋषभदेव भगवान के युग में भी भद्रबाहुगण्डिका थी? इनके उत्तर में कहना होगा कि इन स्थानों की पूर्ति तत्संबंधी अन्य विषयों से हो सकती है। निष्कर्ष यह निकला कि इतिहास-दृष्टान्त-शिक्षा-उपदेश तत्त्व-निरूपण की शैली सबके युग में एक समान नहीं रहती। हां, द्वादशांग गणिपिटक के नाम सदा अवस्थित एवं शाश्वत हैं, वे नहीं बदलते हैं। जिस अंग सूत्र का जैसा नाम है,उसमें तदनुकूल विषय सदा काल से पाया जाता है। विषय की विपरीतता किसी भी शास्त्र में नहीं होती। ऐसा कभी नहीं होता कि आचारांग में उपासकों का वर्णन पाया जाए और उपासकदशा में आचारांग का विषय वर्णित हो। जिस आगम का जो नाम है, तदनुसार विषय का वर्णन सदा सर्वदा उसमें पाया जाता है।

द्वादशांग गणिपिटक प्रामाणिक आगम हैं, इनमें संशोधन, परिवर्धन तथा परिवर्तन करने का अधिकार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को देखते हुए श्रुतकेवली को है, अन्य किसी को नहीं। और तो क्या, अक्षर, मात्रा, अनुस्वार आदि को भी न्यून अधिक करने का अधिकार नहीं है। **जं वाइद्धं वच्चामेलियं हीणक्खरं. अच्चक्खरं. पयहीणं. घोसहीणं.** इत्यादि श्रुतज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अतिचार हैं। अतिचार के रूप में ये तभी तक हैं, जब तक कि भूल एवं अबोध अवस्था में ऐसा हो जाए। यदि जानबूझ कर अनधिकार चेष्टा की जाए तो अतिचार नहीं, अपितु अनाचार का भागी बनता है। अनाचार मिथ्यात्व एवं अनन्त संसार का पोषक है। वेद, बाईबल, कुरान में जैसे किसी मंत्र, पाठ आयत आदि का कोई भी उसका अनुयायी हेर–फेर नहीं करता, इतना ही नहीं प्रत्येक अक्षर व पद का वे सम्मान करते हैं। इसी प्रकार हमें भी आगम के प्रत्येक पद का सम्मान करना चाहिए। ऐसे ही अर्थ के विषय में समझना चाहिए। आगम-अनुकूल चाहे जितना भी अर्थ निकल सके अधिक से अधिक निकालने का प्रयास करना चाहिए इसमें कोई दोष नहीं, बल्कि प्रवचन प्रभावना ही है। जो सिद्धान्त आदि अपनी समझ में न आए वह गलत है, असंभव है, आगमानुयायी को ऐसा न कभी कहना चाहिए और न लिखना चाहिए, अतः ज्ञानियों के ज्ञान को अपनी तुच्छ बुद्धि रूप तराजू से नहीं तोलना चाहिए।

तमेव सच्चं, नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं जो अरिहन्त भगवन्तों ने कहा है, वह निःसन्देह सत्य है, इस मंत्र से सम्यक्त्व तथा श्रुत की रक्षा करनी चाहिए।

श्रुतज्ञान का महत्त्व

परोक्ष प्रमाण में श्रुतज्ञान और प्रत्यक्ष प्रमाण में केवलज्ञान दोनों ही महान् हैं। जिस तरह श्रुतज्ञानी सम्पूर्णद्रव्य और उनकी पर्यायों को जानता है वैसे ही केवलज्ञान भी सम्पूर्ण द्रव्य और पर्यायों को जानता है। अन्तर दोनों में केवल इतना ही है कि श्रुतज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है, इसलिए उसकी प्रवृत्ति अमूर्त पदार्थों में उनकी अर्थ पर्याय तथा सूक्ष्म अर्थों में स्पष्टतया नहीं होती। केवलज्ञान निरावरण होने के कारण सकल पदार्थों को विशदरूपेण विषय करता है। अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान ये दोनों प्रत्यक्ष होते हुए भी श्रुतज्ञान की समानता नहीं कर सकते। पांच ज्ञान की अपेक्षा, श्रुतज्ञान, कल्याण की दृष्टि से और परोपकार की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान रखता है, श्रुतज्ञान ही मुखरित है, शेष चार ज्ञान मूक हैं। व्याख्या श्रुतज्ञान की ही की जा सकती है। शेष चार ज्ञान, अनुभवगम्य हैं, व्याख्यात्मक नहीं। आत्मा को पूर्णता की ओर ले जाने वाला श्रुतज्ञान ही है। मार्गप्रदर्शक यदि कोई ज्ञान है तो वह श्रुतज्ञान ही है संयम-तप की आराधना में, परीषह उपसर्गों को सहन करने में सहयोगी साधन श्रुतज्ञान है।उपदेश, शिक्षा, स्वाध्याय, पढ़ना—पढ़ाना, मूल, टीका, व्याख्यान ये सब श्रुतज्ञान है। अनुयोगद्वारसूत्र में श्रुतज्ञान को प्रधानता दी गई है। श्रुतज्ञान का कोई पारावार नहीं, अनन्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org